# रीतिकालीन कला और परिवेश

**डॉ. राखी उपाध्याय,**

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग*
*डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून, उत्तराखण्ड.*

## शोध सारांश

*भारत विशाल पर्वतों, उत्तुंग श्रृगों, विस्तृत मैदानों, दुर्भेद्य वनों विभिन्न ऋतुओं, सुन्दर वनस्पतियों, हरे–भरे खेतों और घने नगरों तथा भरे–पूरे ग्रामों का देश है। इस प्रकार के भौगोलिक वातावरण के कारण हिन्दू कला में विशालता, स्थूलता, विस्तार विविधता और सम्पन्नता है, तो मुस्लिम कला में विशालभवन, विराट गोल गुम्बद, ऊँची मीनारें, खुले आँगन तथा स्वच्छ और सुनिर्मित दीवारें हैं। रीतिकालीन कला इन दोनों प्रकार की विभिन्न कलाओं के सम्मिश्रण और समन्वय का विकसित रूप है।*

*जिस प्रकार रीतिकालीन साहित्य का स्रोत कालिदासोत्तर संस्कृत साहित्य और भक्तिकालीन साहित्य है। उसी प्रकार अन्य कलाओं का भी। दास्य भावना के अतिरिक्त सम्पूर्ण पुराने भक्तिपोषक दुष्टांत पौराणिक कथाओं के रूप में मंदिरों के भिति चित्रों या भिति मूर्तियों में पहले से ही उभरते जा रहे थे। इनमें वात्सल्य और श्रृंगार की प्रधानता थी। इसी में भारतीय मुस्लिम कलाओं का मिश्रण भी हो गया। एक तरफ भारतीय धर्म प्रधान कला दूसरी तरफ ऐहिकता परक मुस्लिम कला का सम्मिश्रण ही रीतिकालीन कला का केन्द्र बन गया।*

**कुंजी शब्द –** *रीतिकाल, मुगलकालीन कला, परिवेश, स्थापत्य कला, चित्रकला, संगीतकला*

## शोध पत्र

मानव व्यवहार में अनादिकाल से अभिव्यक्त होती हुई और आगत भविष्य में भी अभिव्यक्त होने वाली क्रिया ही मूलतः कला है। भारतीय कला सिन्धु सभ्यता से लेकर मुगल काल तक एक सुदीर्घ परम्परा रखती है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के इतिहास को ही अगर कलाओं का इतिहास कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह इतिहास भगवती भागीरथी की तरह कभी सिमटकर कठोर पाषाणों के मध्य प्रवाहित होता है और कभी आत्म विस्तार कर सम्पूर्ण मानव समाज को अल्पाधिक अपने में आप्लावित कर लेता है।

कला एक युगधर्म है।[1] जिसमें व्यापक स्तर पर सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था एवं भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। भारतीय कला विकास की दीर्घ परम्परा को द्रविण, आर्य, ग्रीक, शक, हूण और मुसलमान जातियों का विशेष सहयोग मिलता रहा है। यह विकास अपने भौगोलिक परिवेश में कभी काम प्रभावित रहा तो कभी धर्म। इस्लाम की प्रगति तथा उसका विकास, शुल्क तथा अल्पवृष्टि वाले प्रदेशों में हुआ जो पश्चिम में भूमध्यसागर के तट के लेकर पूर्व में चीन की प्राचीर तक विस्तृत थे। इन प्रदेशों में मीलों तक हरे–भरे दृश्य, वनस्पति तथा लहलहाते खेत नहीं दिखाई देते थे, इसके अतिरिक्त सच्चे मुसलमान तथा काफिर के विभेद के कारण मुस्लिम उपासकों को एक ही खुले

विशाल मैदान में एकत्र होना पड़ता था जिसमे विस्तार पवित्रता, शान्ति और सुरक्षा की भावना विशेषतः कार्य करती थीं। अतः मुस्लिम कला धर्म और उपासना की कतिपय व्यावहारिक आवश्यकताओं और प्रदेश की भौगोलिक स्थिति से अधिक प्रभावित हई थी।[2]

धर्म सापेक्ष कला जैन बौद्ध और हिन्दू अभिप्रायों से प्रेरित रही। प्रतीक पूजा को मानने वाले धर्मों की प्रकृति के अनुसार स्थापत्य, मूर्ति और चित्रकला का अधिक उन्नयन होता है। बौद्ध स्तूप और मूर्तियाँ, जैन मन्दिर और मूर्तियाँ एवं हिन्दू मन्दिर और इष्ट–प्रतीक भारत की सृजनात्मक प्रतिभा के ज्वलंत प्रमाण हैं। भक्तिकाल में धर्माश्रयी कला के इस त्रिकोण को पंचमुखी कर दिया गया अर्थात् इसके साथ संगीत और काव्य का भी संयोग हुआ।[3] भारत में स्थापत्य और मूर्तिकला प्रधानतः धार्मिक क्षेत्र की कथाओं को ही अपनाती रही। सामान्य रूप से भरतोक्त नाटकीय मुद्राएँ और काम–शास्त्रीय विलास चित्र की मूर्तिकला को अनुप्रमाणित करते थे। उत्तर में खजुराहो की शृंगारी भित्ति मूर्तियाँ और दक्षिण की नाटकीय भित्ति मूर्तियाँ इसके प्रमाण हैं।

## रीतिकालीन कला और परिवेश

भारत में ज्यों–ज्यों मुस्लिम सत्ता सुदृढ़ होती गयी त्यों–त्यों उसका कलात्मक स्वरूप भी स्पष्ट एवं मुखरित होने लगा। मुगल युग के पूर्व में स्थापत्य, संगीत एवं साहित्य का प्रारम्भिक स्वरूप उसके सुनहले भविष्य का संकेत करती है। सलतनत काल से ही कला के उन्नयन और संरक्षण की परम्परा बनने लगी। रीतिकालीन कला इसी परम्परा का समुचित एवं सुविकसित स्वरूप है।

मध्यकालीन इतिहास में मुगलकालीन कला की दृष्टि से का स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इस समय ललित और उपयोगी दोनों प्रकार की कलाओं ने उन्नति की। इस उन्नति का कारण मात्र मुगलकालीन वैभव ही नहीं अपितु तत्कालीन शासकों की जागरूकता रही है। इस जागरूकता के कारण ही फारसी और हिन्दू शैली के सम्यक् प्रयोग से मुगल शैली का विकास हुआ। जिसकी छाप तत्कालीन स्थापत्य, चित्रण, आलेखन आदि ललित कलाओं और जवाहरात–सोने–चाँदी के काम, कढ़ाई–बुनाई इत्यादि पर भी स्पष्ट अंकित है। इन सभी में ऐश्वर्य का उल्लास है।[4]

रीतिकालीन युग में कला विकास की हिन्दू एवं मुस्लिम दो अलग–अलग धाराएँ भी प्रवाहित रहीं और दोनों का समन्वय भी हुआ। वैसे मुस्लिम समाज दो वर्गों में बँटा हुआ था– एक वर्ग धर्म के कला–निरपेक्ष रूप को स्वीकार करता था तो दूसरा कला को धर्म–क्षेत्र में स्वीकार करता था। बाबर से शाहजहाँ तक के दरबार में कला बराबर आश्रय पाती रही मगर औरंगजेब ने कला को ऐहिक जीवन से सम्बद्ध मानकर उसे दफनाने की आज्ञा दी थी। परिणाम स्वरूप कला ने विकास केन्द्र से हटकर स्थानीय रूप धारण कर लिया। फलतः वह सहसमुखी होकर चारों दिशाओं में बिखर गयी।

## स्थापत्य कला

रीतिकालीन परिवेश हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति में संधिस्थल रहा है। दोनों में समन्वय एवं संघर्ष की शक्तियाँ बराबर बनी रहीं। मुस्लिम संस्कृति में मूर्तिकला पर एक धार्मिक वर्णन सदैव प्रबल रहा है। इस संस्कृति के सुधारवादी रूप में सामान्य रूप से कलाओं का प्रोत्साहन एक सीमा तक ही सम्भव रहा है। हिन्दू संस्कृति में मूर्तियों या प्रतीक की उपासना तत्कालीन लोक–प्रिय प्रवृत्ति के अन्तर्गत थी। स्थापत्य के क्षेत्र में धार्मिक और ऐहिक दोनों प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही थीं। धार्मिक स्थापत्य में दोनों ही संस्कृतियाँ आत्म विस्तार, गरिमा एवं भव्य विशलता को प्रश्रय देती थी, परन्तु शिखर, गुम्बद, मेहराव, द्वार एवं प्रतीक

भिन्न–भिन्न थे। फलतः एक युग व्यापी संघर्ष हुआ। मंदिर और मस्जिद धर्म के प्रतीक होने के कारण एक समन्वित कला को जन्म नहीं दे सके। यह समन्वय राजमहलों भवनों एवं छतरियों के निर्माण तक सीमित होते हुए भी आदान–प्रदान की पद्धति से एक अद्भुत सौन्दर्य उभर कर सम्पूर्ण परिवेश को गौरव मण्डित कर देता है।

साहित्य के क्षेत्र में जैसे प्रबन्ध एवं मुक्तक दो स्वतंत्र काव्य स्वरूप देखने को मिलते हैं उसी प्रकार स्थापत्य के क्षेत्र में भी एक प्रबन्ध की सी संधि योजना, विषदता एवं सांस्कृतिक पीठिका कलाकारों के लिए अभीष्ट थी। मुक्तक या गीत का स्वरूप स्थापत्य में लोक–प्रिय नहीं हुआ। यह विराटता, भव्यता एवं महानता शासक के महान व्यक्तित्व एवं विशाल आकांक्षाओं का ही प्रतिनिधित्व करता है।

मुगलकालीन स्थापत्य अकबर के शासनकाल से ही प्रारम्भ होता है। उसके राज्यकाल में स्थापत्य के क्षेत्र में हिन्दू और ईरानी दोनों शैलियों का वर्चस्व था। डॉ. शिवलाल जोशी का विचार है कि "सूक्ष्म दृष्टि से उसके समय के भवनों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य में भारतीय कला का अधिक बोलबाला था।" इसका कारण शायद उसका भारतीय दृष्टिकोण उदार मनोवृत्ति एवं हिन्दुओं की सहानुभूति अर्जित करना था। अकबर कालीन अनेक भवनों का शिल्प हिन्दू है और उसके अलंकरण तत्व हिन्दू तथा जैन मंदिरों से लिये गये हैं। आगरा के किले में जहाँगीरी महल और उसके वर्गाकार स्तम्भों तथा छोटी–छोटी मेहराबों की पंक्तियों में फतेहपर सीकरी के अनेकों भवनों तथा लाहौर के किले में हिन्दू शैली विलक्षण रूप से प्रकट हुई है। पुरानी दिल्ली में ईरानी शैली पर बना हुमायूँ के मकबरे में भी कब्र की बनावट भारतीय है इमारत के बाह्य भाग में श्वेत संगमरमर का स्वच्छन्द प्रयोग भी भारतीय है।

इसके अतिरिक्त अनेक दुर्ग राजप्रासाद, आमोद–प्रमोद के भवन, स्तम्भ, सराय, शलायें, तालाब, कुएँ इत्यादि में भी इन दोनों शैलियों का प्रयोग हुआ है। जोधाबाई का महल तो सबसे भव्य एवं आकर्षक है। इसके अलावा हिन्दू रचना पद्धति पर बने हुये दीवाने खास, फतेहपुर सीकरी की शान जामा मस्जिद, बुलन्द दरवाजा, भारतीय एवं बेजोड़ स्थापत्य के नमूने हैं। अन्य प्रसिद्ध भवनों में बीरबल का गृह, ख्वाबगाह, आमेर की राजकुमारी का निवास स्थान सुनहरा महल, इलाहाबाद का चालिस स्तम्भों वाला राजप्रासाद जिसमें छतवाला बरामदा हिन्दू 'स्तम्भों की पंक्तियों पर आधारित है– निश्चित रूप से भारतीय शैली की रचना है। इसी प्रकार सिकन्दरा में अकबर का मकबरा बौद्ध बिहारों की शैली पर आधारित है। लाल पत्थर का बनाया हुआ आगरे का किला भी तत्कालीन स्थापत्य का एक सुन्दर नमूना है। अकबरकालीन स्थापत्य में एक तरफ ओज दूसरी तरफ हिन्दू एवं मुस्लिम शैलियों का समुचित समन्वय बड़ा ही आकर्षक एवं मनोरम है। अकबर कालीन स्थापत्य में प्रयुक्त हिन्दू शैली की व्यापकता और मुसलमानों की धार्मिक एवं विस्तारवादी नीति तथा व्यवहार के अन्तर को देखकर आश्चर्य होता है।

जिस प्रकार के स्थापत्य का निर्माण अकबर ने कराया उसी शैली के आधार पर जोधपुर, जयपुर, ओढछा, दतिया आदि राज्यों में भी राज्य भवनों का निर्माण हुआ। राजा मानसिंह ने स्थान–स्थान पर लाल पत्थर से हिन्दू मंदिर बनवाये। उनमें शुद्ध पारिभाषिक रूप से शिखरों और सामान्य प्रभाव की योजना मिलती है। वृन्दावन का पुराना गोविन्द मन्दिर भी मानसिंह ने ही बनवाया था। इसके अतिरिक्त अनेकों देशी राजाओं ने स्थापत्य का निर्माण कराया। जो अपने आप में अनुपम है।

जहाँगीर के समय में वास्तुकला के उद्देश्यों एवं रूपरेखा में परिवर्तन हो गया।

विलासी जीवन की अभिव्यक्तियाँ वास्तुकला को अधिक प्रभावित करने लगी। यहाँ आकर शिल्प अलंकरण प्रिय हो गया। विषदता एवं गम्भीरता का स्थान लालित्य एवं सुकुमारता ने लिया। सिकन्दरा में अकबर के मकबरे की अंतिम मंजिल जहाँगीर की अलंकार प्रियता का स्पष्ट संकेत देती हैं। इसमें विषदता गम्भीरता एवं अलंकृत लालित्य का संधिस्थल है तथा इसका निचला भाग अलंकृत लालित्य में सराबोर है। अलंकरण की प्रवृत्ति ने धीरे–धीरे बढ़ कर मकबरों की प्राकृतिक शांति सरलता और गम्भीरता को समाप्त कर दिया। एक तरफ 'एतमा–दुद्दौला' के मकबरे में नूरजहाँ की अलंकार प्रियता चित्र को प्रफुल्लित करता है तो दूसरी तरफ अकबरकालीन पौरुष का दफन कष्ट देता हैं साहित्यक की स्त्रैणता स्थापत्य में भी आ गयी। डॉ. नगेन्द्र ने उसे लक्ष्य करके कहा है– "श्वेत संगमरमर में झिलमिल पच्चीकारी तथा मूल्यवान पत्थरों के अलंकरण के कारण ऐसा जान पड़ता है मानो कोई बहुमूल्य आभूषण भवन के रूप में खड़ा कर दिया गया है।"

शाहजहाँ के शासनकाल में स्थापत्यकला चरमोत्कर्ष को प्राप्त होती है। अकबर द्वारा निर्मित लाल पत्थर संगमरमर के मंडपों का निर्माण किया गया। संगमरमर के कटावदार महाराव, मूल्यवान, पत्थरों की जड़ाई परिष्कृत सज्जा तथा सूक्ष्म अलंकरण शाहजहाँ द्वारा निर्मित भवनों की मुख्य विशेषताएँ हैं। दीवाने–आम, दीवाने–खास, खासमहल, शीशमहल, मुसम्मन बुर्ज, तथा मच्छी भवन शाहजहाँ द्वारा बनवाई हुई मुख्य इमारतें हैं। इन सभी की आत्मा श्रृंगारिक है। सूक्ष्म पच्चीकारी, चित्रलिखित सी सजीवता, सुनहले तथा रंगीत स्तम्भ, इन सभी में एक विलासपरक ऐश्वर्य प्रधान जीवन दृष्टि का परिचय मिलता है। मोती महल, हीरामहल, रंगमहल, नहरेबहिश्त तथा शाहबुर्ज नाम ही इसी तथ्य की पुष्टि के लिए यथेष्ट है।[5] निर्माण की दृष्टि से जमामस्जिद तथा ताजमहल की योजना मुगल–स्थापत्य–परम्परा की प्रथम इमारत हुमायूँ के मकबरे के अनुकरण पर हुई है। ताज की विशेषता तथा वैभव उसकी सज्जा तथा अलंकरण है। शाहजहाँ की वास्तुकला की चरमपराकाष्ठा आगरा की मोती मस्जिद में देखी जा सकती है। यह अपनी पवित्रता, सादगी, अनुपात की पूर्णता और रचनावृत्ति के सामंजस्य के लिए अपने ढंग की अनुपम एवं बेजोड़ इमारत है। इनके मेहराबों और स्तम्भों में में हिन्दू–प्रतीक तथा रचनावृत्ति की पुनरावृत्ति है।

अलंकरण और सज्जा की मौलिकता औरंगजेब के समय में रूढ़ बन गयी। रजिया बेगम का मकबरा बनारस की मस्जिद, सफदरजंग का मकबरा, बनारस की मस्जिद, दिल्ली के लालकिले में औरंगजेब द्वारा बनवायी मोती मस्जिद ये सब फारस की परम्परित शैली के आधार पर बने हैं। 19वीं शताब्दी में लखनऊ के एक मकबरे में ताज की अनुकृति बनाने की चेष्टा हीन तथा अपरिष्कृत रूचि का परिचय देता है। बाह्य समानता होने पर भी दोनों का प्रभाव भिन्न है। औरंगजेब के मकबरे में मार्दव है, न गाम्भीर्य और न ऐश्वर्य। अनेक सामन्तों के मकबरे इससे उत्कृष्ट हैं।"[6]

वास्तव में यह युग ही प्रतिभा के ह्रास का रहा है। इसका बोध लखनऊ की इमारतों की हीन रूचि तथा अपरिष्कृत को देख कर हो जाता है। लखनऊ की प्रायः सभी इमारतों में ऐसा जान पड़ता है मानो शिल्पी ने उस लिपि का अनुकरण करने का प्रयास किया हो जिसका न तो वह अर्थ समझता है और न जिसकी वर्णमाला से ही उसका परिचय है।[7]

इस सम्राटों के समानान्तर ही हिन्दू नरेश भी कला को प्रश्रय देते थे। उन्होंने ने भी राज–प्रसाद, दुर्ग, मन्दिर आदि का निर्माण कराया। यहाँ ध्यान देने योग्य बात ये है कि हिन्दू स्थापत्य में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। हिन्दू राजाओं ने भी बड़े–बड़े राजप्रासाद बनवाये थे जिसमें दीवाने आम, शीशमहल और शाही महल

की बारहदरी का अनुकरण था। इनके स्थापत्य में हिन्दू और ईरानी शैली दृष्टिगत होती है। इस युग के स्थापत्य का उदाहरण वीरसिंह बुन्देला का विशाल महल, जोधपुर दुर्ग और राजप्रासाद आमेर के महल और अजमेर झील के भवन हैं। मुसलमानों के अनुकरण पर हिन्दू नरेश भी अपनी छतरियों तथा समाधियों का निर्माण कराने लगे। सूरजमल, छत्रसाल तथा उनकी रानी की छतरियाँ इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। इस युग का प्रसिद्ध मन्दिर वीरसिंह का मंदिर था– जिसे शाहजहाँ ने नष्ट कर दिया था। उत्तरी भारत के अधिकांश मंदिर जो इस समय भी मौजूद हैं इसी युग की देन है।

इस प्रकार रीतिकालीन स्थापत्य कला को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि रीति–साहित्य की समान्तर प्रवृत्तियाँ ही इस क्षेत्र में भी चलती रही। वह परम्पराबद्ध शैली, अलंकरण की प्रवृत्ति, चमत्कारिक भावना, श्रृंगार और दरबारी वैभव विलास की सृष्टि का प्रयास सर्वत्र परिलक्षित होता है।

## चित्रकला

स्थापत्य एक व्यय साध्य कला है। इसलिए कभी भी यह प्रत्येक राजा सामन्त या सामान्य जनता के लिए सम्भव नहीं था कि वे इसको संरक्षण दे। लेकिन चित्रकला काव्यकला की ही तरह सरल, सहल एवं अल्पव्यय की कला है। रीतिकालीन परिवेश में चित्रकला राजसभाओं में काव्य की ही भाँति समाहित हुई, वास्तविकता तो यह है कि चित्रकला काव्य कला की ही भाँति–जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मानव जीवन को अपने विशाल बाहुपाश में बाँधे हुए है। काव्य और चित्रकला दोनों अनादि काल से साथ–साथ चलते रहे हैं। मगर इस युग में इन दोनों में चोली दामन का सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। जैसे रीति कालीन काव्य का स्रोत प्राचीन काव्यों एवं भक्तिकालीन काव्यों में मिलता है। उसी प्रकार इस युग के चित्रकला का स्रोत भी वहीं रहा है।

इस काल की चित्रकला के स्रोत हिन्दी और संस्कृत के लक्षण लक्ष्य साहित्य, पुराण और भक्ति साहित्य एवं दरबारी और लोकजीवन से माना जा सकता है। साहित्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन भक्ति आन्दोलन से आया। इससे लक्षण और लक्ष्य दोनों प्रकार के साहित्य प्रभावित हुए और इन्हीं दोनों ही स्रोतों से रीतिकाल के पूर्ववर्ती एवं समवर्ती कलाकरों ने वस्तु एवं अभिवायों का चुनाव किया। श्रृंगार के रसराजत्व में भावी काव्य और चित्रकला दोनों के ही तत्व निहित थे। शक्ति आन्दोलन की भावात्मक साधना पद्धति में श्रृंगार को शीर्ष स्थान प्राप्त हुआ। श्रृंगार के साथ राधाकृष्ण और गोपियों के प्रेम गीत गृहीत हुए। इस विधान में नायक–नायिका और दूती के भेद–प्रभेदों को लोक–प्रियता मिलना स्वाभाविक था। फलतः श्रृंगार के क्षेत्र में नायक–नायिका भेद प्रमुख हो गया। भानुदत्त की 'रसमंजरी' नायिका भेद पर सबसे विशद और स्वतंत्र ग्रंथ है। इसने परवर्ती भक्ति साहित्य को भी प्रभावित किया और रीतिसाहित्य को भी। 'रसमंजरी' के आधार पर बसोहली शैली के अनेक भव्य चित्रों की रचना हुई।[8] उज्ज्वल नीलमणि और भक्ति रसामृत–सिन्धु काव्य शास्त्र में नायिकाओं की विभिन्न स्थितियों के आधार पर वर्णित साधना पद्धति और जयदेव का 'गीतगोविन्द' और संगीतशास्त्र में वर्णित रागरागनियों के चित्र भावी कवियों और चित्रकारों के लिए प्रेरणा स्रोत बना। कांगड़ा शैली तथा अन्य शैलियों के भी चित्र इसके आधार पर बने हुए हैं।

आगे चलकर केशवदास की 'रसिकप्रिया' के आधार पर अष्टनायिकाओं के अनेक चित्र बने। इतना ही नहीं 'रसिकप्रिया' ने कांगड़ा, बसोहली और राजपूत शैली को बहुत प्रभावित किया। बिहारी सतसई में चित्रित नायिकाओं और भाव भूमियों को रंग और रेखाओं के माध्यम से भी

अनेकों चित्रकारों ने उतारा। अन्य रीतिकालीन कवियों के प्रभाव को भी स्वीकार किया जाता है, जैसे मतिराम, बंशीधर आदि।[9]

इस युग के कुछ चित्रों के ऊपर रीतिकालीन कवियों के छन्द भी अंकित हैं–

**लोक लाज तजि राज रंग निरसंक बिरासत।**

**कह 'केशवदास' विलास निधि फागुन फागुन छड़ियै।[10]**

केशव का यह छंद अजितघोष के संग्रह के एक चित्र पर लिखा है। इसमें संगीत, चित्र और काव्य तीनों का सामंजस्य है। राजपूत शैली से प्रभावित इस चित्र में बसन्त राग और बारहमासा के एक भाग का वर्णन है। इसी प्रकार बिहारी सतसई के आधार पर राजपूत शैली में अनेकों चित्र बने हुए हैं। बसोहली शैली में कृष्ण लीली के अभिप्राय के एक चित्र में–

**'अहे दहेंडी जिनिधरै जिवि तूँ लेहि उतारिं।**

**नीकै है छींकै छुबै ऐ सैंई रहि नारि।।[11]**

बिहारी का यह दोहा लिखा है। इसी प्रकार बसोहली चित्र संग्रह में एक और चित्र है। उस पर कीया बासक सज्जा की आकृति बनी है। उसपर रीतिकालीन कवि का यह छन्द भी अंकित है– 'देरनि जठनि सास ननद राषी स्वाइ।"[12] रीतिकाल के पूर्व सूरदास के गीतों के आधार पर बने चित्रों ने भी इस काल के चित्र को व्यापक पृष्ठभूमि प्रदान की थी। तुलसी और जायसी की कृतियों के आधार पर कथात्मक और धार्मिक चित्र बने। संस्कृत और हिन्दी के लक्षण–लक्ष्य साहित्य ने इस युग के सभी शैलियों के चित्रों को नवीन जीवन प्रदान किया। भागवत् की कृष्ण लीलाओं ने मुगल कालीन चित्रों को बहुत अधिक प्रभावित किया।

बल्लभ सम्प्रदाय का केन्द्र राजस्थान बनने से यहाँ पर पौराणिक भित्ति चित्रों की कला अधिक पनपी। यह राजपूत शैली के बहुत भिन्न नहीं थी। इसके अलावा भक्ति सम्प्रदाय के संत और आचार्यों के चरित्र भी अनेक चित्रों के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। रामानन्द के प्रभाव से सीता और राम, विष्णु और लक्ष्मी, के चित्रों की परम्परा प्रत्येक शैली में चली। कबीर धर्मदास और कमाल के कई चित्र काँगड़ा शैली में मिलते हैं। बसोहली शैली के चित्रों में नारायण नामक जहाँगीर कालीन सन्त के चमत्कारपूर्ण कार्यों के अनेक चित्र भी मिलते हैं। इसके अतिरिक्त सिक्खों के दस गुरु भी आते हैं। जिनका चित्र सांसारचन्द के दरबारी को कलाकारों ने बनवाया था। भावगवत् के आधार बने चित्रों में वात्सल्य, गोचारण, लोकरक्षक–लीलाएँ, वंशीवादन और दूसरे श्रृंगारी लीलाओं कसे संबन्धित चित्र मिलते हैं।

इन सब स्रोतों से अलग लोक जीवन का विस्तृत फलक था जो तत्कालीन चित्रों को प्रभावित किया। इसमें पंजाब और राजस्थान की लोक संस्कृति का विशेष योगदान रहा है। काँगड़ा शैली के चित्रों में चित्रित स्त्री और पुरुषों की वेश–भूषा पंजाब के लोक जीवन के सम्बद्ध है तो अन्य पोशाक राजस्थानी लोक जीवन से कहीं–कहीं मुगल वेश–भूषा से युक्त राजाओं के व्यक्ति चित्र भी पाये जाते हैं। मात्र लोक जीवन की साज–सज्जा ही नहीं अपितु लोकजीवन की प्रेम कहानियों को भी उन्होंने चित्रित किया। पंजाब की लोककथा हीर–रांझा, मिर्जा–साहिबान और सोनी–महीपाल ऐसी ही कथाएँ हैं। जिन्हें कांगड़ा शैली में प्रमुखता प्राप्त है। राजपूत शैली के चित्रों ने तो लोकाश्रय और राज्याश्रय समान रूप से प्राप्त किये थे। इसी से इसका प्रचार प्रसार ज्यादा हुआ। कांगड़ा की परिष्कृत शैली लोकजीवन से बराबर सम्पर्क बनाये रही। उत्तर भारत की सम्पूर्ण धार्मिक और लौकिक शिल्प–रेखाएँ इस चित्रकला को आधार भूमि प्रदान करती हैं।

दरबारी जीवन से संबंधित तीन प्रकार के चित्र मिलते हैं– राजाओं के व्यक्ति चित्र, दरबार चित्र और राजविनोद चित्र। इसके प्रेरणा स्रोत मुगल दरबार थे। मुगलदरबार के चित्रों के आधार पर अनेक राजपूत राजाओं के दरबार उनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ तथा उनके व्यक्तित्व से संबंधित अनेक चित्र खींचे गये। राजकीय संरक्षण के कारण उनमें दरबारी कला की सब विशेषताएँ मिलती हैं।[13]

रीतिकाल की दो शताब्दियों में प्राप्त होने वाले चित्रों को देखने से प्रतीत होता है कि काव्य की तरह यहाँ भी परंपरा का पालन किया गया है। प्रतिपाद्य की दृष्टि से तत्कालीन चित्रों को चार भागों में बाटा जा सकता है।

1. श्रृंगारी चित्र
2. धार्मिक, व पौराणिक उपाख्यानों पर आधृत चित्र
3. राग–रागिनियों के प्रतीक चित्र
4. व्यक्ति चित्र[14]

किसी युग की विशेषता उसकी विषय–वस्तु और अभिव्यंजना शैली दोनों से ही स्पष्ट होती है। विषय वस्तु परिवेश के विचार पक्ष को स्पष्ट करता है। रीतिकालीन चित्रकला में 11वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी की भावात्मक उत्क्रान्ति दृष्टिगत होती है। इसके अतिरिक्त स्थूल परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है।

काव्य की तरह चित्रकला का भी केन्द्रीय भाव श्रृंगार ही रहा। रंग और द्युति अलंकृति उस काल के शब्द और रेखाओं की विशेषत नहीं थी। तत्कालीन चित्र श्रृंगार रेखाओं की गरिमा को भुलाकर रंगों की तड़क–भड़क और उसके सुरुचिपूर्ण साम्य पर आधारित हो गया। अनुभूतियों के उभार के स्थान पर अंग प्रत्यंग का उभार सामने आया। सूक्ष्म अलंकरण की प्रवृत्ति चमत्कारोंन्मुख होने लगी। श्रृंगारिक चित्र में ऋतु चित्र अस्तबिध नायिका चित्र, नायक चित्र, कृष वार्ता से संबंधित चित्र और स्फुट श्रृंगारिक चित्र मिलते हैं। धार्मिक चित्र भित्तिचित्रों या रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थों के पृष्ठों पर अंकित हुई। इसी समय समुद्र मंथन, विष्णुस्तुति, कृष्ण–जन्मादि एवं दावानल, लीला, कालीयदमन गोवर्द्धन धारण लीलादि के चित्र बने। पौराणिक कथाओं के पट चित्रों का भी प्रचलन था। राग रागनियों के प्रतीक चित्रों में विदेशी प्रभाव दिखाई पड़ता है। टोड़ी राग, रागबिलावल, हिण्डोलराग, राग कुसुम, राग असावारी, रागमेघमल्हार, राग गौड़ मलारादि[15] के चित्रों में इस देख जा सकता है। व्यक्तिचित्र में सम्राट उसका दरबार आखेट, प्रमुख घटनाओं आदि का समावेश है।

शैली की दृष्टि से तत्कालीन चित्रों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है: भारतीय और मुस्लिम। भारतीय शैली में राजपूत शैली, काँगड़ा शैली और बसोहली शैली प्रमुख हैं। मुगल शैली के चित्रों में भारतीय कथाचित्र, अभारतीय कथा–चित्र ऐतिहासिक कथा चित्र, व्यक्तिचित्र और मनोविनोद व आखेट के चित्र मिलते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता हैकि काव्य की तरह ही चित्र कला भी सामन्ती जीवन का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें लोकतत्व जहाँ भी आये हैं– वे अपने स्वाभाविक रूप में नहीं।

## संगीत और कला

संगीत में नृत्य, नाट्य और गीत तीनों का समावेश होता है। इन कलात्रयी के आदि प्रवर्तक भगवान शिव माने जाते हैं। कालान्तर में नाट्य और नृत्य की परम्परा भरत से और संगीत को नारद ने आगे बढ़ाया। यह संगीत परम्परा हमारे देश में अनादि काल से चला आ रही है। संस्कृत साहित्य में संगीत पर अनेकों ग्रंथ पाये जाते हैं। भक्तिकाल में तो इसका अभूत पूर्व प्रचार एवं प्रचार हुआ। इसकी सबसे बड़ी विशेषता वह थी कि यह राजदरबार और सामान्य जन में बराबर रूप से समादृत हुई।

रीतिकालीन परिवेश में हिन्दू और मुसलमान दोनों दरबारों में इसे समान रूप से सम्मान मिला। इसके सम्वर्द्धन में राजदरबार, धार्मिक प्रवृत्तियाँ एवं जनसामान्य सब का योगदान रहा है। जैसे कला के अन्य क्षेत्रों में समन्वय हुआ उसी प्रकार संगीत के क्षेत्र में भी। इस युग में संस्कृत के समानान्तर हिन्दी में भी संगीत शास्त्र की रचनाएँ हुई। इसके प्रथम पुरोधा तानसेन माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त देव का 'राग रत्नाकर' हरिबल्लभ जी का 'संगीत दर्पण' अब्दुलवली का 'रागमाला', कृष्ण कवि का 'रागकुतहल', कृष्णदेव व्यास का 'रागकल्पद्रुप', गंगाधर का 'रागमालादि' संगीत शास्त्रीय ग्रंथ हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत में भी अनेकों रचनाएँ लिखी गयी– उनमें मेशकर्ण की 'रागमाला', पुण्डरीक विट्ठल की 'रागमाला', सोमनाथ की 'रागविनोद', भावभट्ट की 'अनुपसंगीत विलास' व 'अनूपसंगीत रत्नाकार' दामोदार मिश्र का 'संगीतदर्पण' कोश ग्रंथ 'रागकल्पद्रुप' राजा जगजोति मल्ल का 'संगीत सार संग्रह', वैंकट मक्की का 'चतुरदण्डि प्रकाश' अहोबल का 'संगीत पारिजात', सुभांकर का 'संगीत दामोदार' मुदेवेद का 'संगीतमकरंद' पुरुषोत्तम मिश्र का 'संगीत नारायण', तुलाजी का 'संगीत रसामृत' और प्रतापसिंह देव का 'संगीत सार' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। उस युग की आवश्यकतानुसार इनके भाषानुवाद भी होने लगे थे।

मुगल शासक भारतीय संगीत से इतने प्रभावित हुए कि रागदर्पण, संगीत दर्पण, संगीत पारिजात और मानकुतूहलादि का फारसी अनुवाद कराये। इसके साथ–साथ चित्रकला और काव्य कला का घनिष्ठ संबंध रहा है। मंदिरों से या लोकजीवन से जुड़नेवाली संगीत की आन्तरिक भावभूमि विस्तृत थी और दरबारों से संबंधित संगीत शास्त्रीय विधान से जुड़ी थी। वस्तुवादी युग में संगीत उतनी दृढ़ता से युग मानस को नहीं पकड़ सका– जितना की अन्य कलाएँ।

रीतिकालीन कला और परिवेश पर विहंगम दृष्टिपात करने से एक निर्विवाद सत्य उभर कर सामने आता है कि हिन्दुओं की प्राचीन चित्रकला, स्थापत्य कला और संगीत मुगलों के सम्पर्क से विकसित नवीन शैली में विलीन नहीं हुई। ईरानी और मुगल शैलियों के सम्पर्क से इनका पुनर्जागरण हुआ। राजपूत शैली का उद्भव अजन्ता शैली से माना जाता है। जयपुर केन्द्र होने से यह राजस्थानी शैली कही जाती है। कतिपय विशिष्ट परिवर्तनों के साथ सत्रहवीं शताब्दी में इसे पहाड़ी शैली से अभिहित किया गया। लेकिन दोनों में मूलभूत अन्तर भी है– राजस्थानी शैली आलंकारिक है तो पहाड़ी शैली भाव प्रधान। पहाड़ी शैली के विषय अधिक विस्तृत है। उसमें पौराणिक तथा धार्मिक चित्रों के अतिरिक्त लोक कथाओं तथा कृषक जीवन का सफल चित्रण है। दोनों में रसों का उच्चतम निर्वाह, रेखाओं में भावाभिव्यंजना और जीवन की गतिशीलता का निर्वाह है, परन्तु पहाड़ी शैली में राजा और राजकीय वैभव का चित्रण और संगीत का प्रभाव आभासित होता है।

राजपूत शैली में दिव्यातिदिव्य गुणों के लिए प्रख्यात राजपूत जाति की भावनाओं की रंग और रेखाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। ग्रामीण जीवन उनके धर्म, आमोद–प्रमोद गाँव के बाजार, पनघट, खेत–खलिहान, घरेलू काम–धन्धें, उद्योग तथा यात्रा और विश्राम स्थलादि के बहुविध चित्र पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त करुणा, सहानुभूति, स्नेह, प्रेम, वात्सल्यादि मनोवेगों का चित्रण इसमें बहुत सुन्दर हुआ है। राजपूत शैली में धर्म के क्रियात्मक रूप से जीवन के पूर्णत्व को दर्शन होते हैं।

शैली की दृष्टि से मुगल चित्रकला में ईरानी अलंकारिता के स्थान पर और स्वाभाविकता आ गयी। इस चित्र में रेखाओं की गोलाई और कोमलता आकृतियों में गति तथा स्फूर्ति, हस्तमुद्राओं में सजीवता और उनके प्रयोग का

बाहुल्य था। विविध चटकीले, सुनहले तथा रूपहले रंगों का प्रयोग भी अत्यधिक हुआ है। व्यक्तिचित्र के चित्रण में आकृति अंकन, व्यक्तित्व के स्पष्टीकरण और मुख तथा मस्तिष्क के बनाने में चित्रकारों ने सूक्ष्मता तथा पटुता प्रदर्शित की है, परन्तु इस शैली में भाव तथा जीवन का अभाव है। मुगलों की विलासिता और वैभव प्रदर्शन में ही कला संकुचित और कृत्रिम बन गयी।

मुगलों के स्थापत्य में ईरानी प्रभाव की अधिकता के कारण मुस्लिम स्थापत्य की सरलता कम हो गयी थी। मुगल सम्राटों के अपूर्व वैभव और असीमित धनागार ने उनमें अत्यनत मनोरम भवन निर्माण, उद्यान, नगर निर्माण की शक्ति उत्पन्न कर दी थी। ईरानी और हिन्दू शैली के समन्वय के विकासपूर्ण मुगल शैली का निर्माण किया जिसकी छाप तत्कालीन, चित्रकला, स्थापत्य तथा ललित कलाओं पर अंकित है। मुगलकालीन विभिन्न इमारतों की प्रमुख विशेषताएँ गोल गुम्बद, पतले स्तम्भ और विशाल खुले द्वार हैं।

संगीत के दो अलग–अलग क्षेत्र विकसित हो रहे थे– मन्दिर और दरबार। मन्दिर के संगीत का संबंध भावनात्मक लयों से था तो दरबारी संगीत का शास्त्रीय विधान से। इस युग में काव्य और संगीत दोनों दो क्षेत्रों में बट गये। भक्ति काल की विशेषता समाप्त हो गयी। काव्य और चित्र के क्षेत्र में समन्वय हुआ। सम्पूर्ण कलाओं में वस्तुपरकता और विलासयुक्त अलंकरण की बहुलता सर्वत्र व्याप्त है।

## संदर्भ सूची

1.शर्मा, डॉ. के. यल., साहित्य : अन्य कलाओं के संदर्भ में, पृ.सं.– 5
2.जोशी, डॉ. शिवलाल, रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि , पृ.सं.– 172,
3.वेंकटरमणराव, डॉ. वै., रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ.सं.– 397,
4.डॉ. नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका पृ.सं.– 21
5.डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ.सं.– 26
6.डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ.सं.– 26
7.डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ.सं.– 26
8.वैंकटरमणराव, डॉ. वै., रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ.सं.– 405
9.वैंकटरमणराव, डॉ. वै., रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ.सं.– 46
10. केशवदास, कवि प्रिया, मातृ भाषा प्रकाशक, प्रयाग, 10(35)
11. रत्नाकर, जगन्नाथ, बिहारी रत्नाकर, दोहा सं. 611
12. वैंकटरमणराव, डॉ. वै., रीतिकालीन काव्य की साहित्य पृष्ठभूमि, पृ.सं.– 407
13. डॉ. नगेन्द्र, रीतिकालीन साहित्य का वृहत् इतिहास, पष्ठ भाग, पृ.सं.– 21
14. डॉ. नगेन्द्र, रीतिकालीन साहित्य का वृहत् इतिहास, पष्ठ भाग, पृ.सं.– 21
15. डॉ. नगेन्द्र, रीतिकालीन साहित्य का वृहत् इतिहास, पष्ठ भाग, पृ.सं.– 19

*Copyright © 2015, Dr. Rakhee Upadhyay. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.*